महाराणा का महत्त्व

(ऐतिहासिक काव्य)

जयशंकर 'प्रसाद'

१९८५
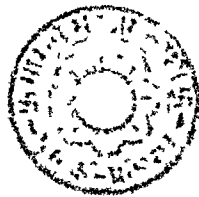
प्रकाशक
भारती-भण्डार
(पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता)
बनारस सिटी

प्रथम संस्करण
मूल्य ।=)

मुद्रक
श्रीप्रवासीलाल वर्मा
सरस्वती-प्रेस
काशी

सबसे पहली कविता, लेखक की 'भरत' नाम की है। हर्ष की बात है कि इसी छन्द को भिन्न तुकान्त के लेखकों ने पसन्द किया है; और इसी छन्द में वे अपने विचार प्रकट करने लग गये हैं। क्योंकि भिन्न तुकान्त होने पर भी छन्द में जो गति होनी चाहिये वह इसमें सर्वथा प्रस्तुत है। मेरी समझ में गीति रूपक (Opera) के लिये भी यही छन्द सबसे उपयुक्त है।

मार्च १९१३ में लेखक ने 'करुणालय' नाम का एक गीति रूपक इन्दु में लिखा था। यह देखकर और भी हर्ष होता है कि पं० रूपनारायण पाण्डेय जैसे साहित्यिक ने हाल ही में 'तारा' नामक गीति रूपक का इसी छन्द में अनुवाद करके उक्त मत की पुष्टि की है।

—प्रकाशक

महाराणा का महत्त्व

"क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है?"
शिविका मे से मधुर शब्द यह सुन पड़ा।
दासी ने उन सैनिक लोगो से यही
—यथा प्रतिध्वनि दुहराती है शब्द को—
प्रश्न किया जो साथ-साथ थे चल रहे।
कानन में पतझड़ भी कैसा फैल के
भीषण निज आतंक दिखाता था, कड़े
सूखे पत्तो के ही 'खड़-खड़' शब्द से

अपना कुत्सित क्रोध प्रकट था कर रहा।
प्रबल प्रभंजन वेगपूर्ण था चल रहा
हरे-हरे द्रुमदल को खूब लथेड़ता
घूम रहा था, क्रूर सदृश उस भूमि मे।
जैसी हरियाली थी वैसी ही वहाँ—
सूखे काँटे पत्ते बिखरे ढेर-से
बड़े मनुष्यों के पैरो से दीन-सम
जो कुचले जाते थे, हय-पद-वज्र से।
धूल उड़ रही थी, जो घुसकर आँख में
पथ न देखने देती सैनिक वृन्द को,
जिन वृक्षो मे डाली ही अवशिष्ट थी
अपहृत था सर्वस्व यहाँ तक, पत्र भी—
एक न थे उनमे, कुसुमो की क्या कथा!
नव वसत का आगम था बतला' रहा
उनका ऐसा रूप, जगत-गति है यही।
पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या भली,
अवनति को जो सहन करे गंभीर हो
धूल सदृश भी नीच चढ़े सिर तो नहीं

जो होता उद्विग्न, उसे ही समय में
उस रज-कण को शीतल करने का अहो
मिलता बल है, छाया भी देता वही।
निज पराग को मिश्रित कर उनमे कभी
कर देता है उन्हे सुगंधित, मृदुल भी।
देव दिवाकर भी असह्य थे हो रहे
यह छोटा-सा झुंड सहन कर ताप को,
बढता ही जाता है अपने मार्ग मे।
शिविका को घेरे थे वे सैनिक सभी
जो गिनती मे शत थे, प्रण मे वीर थे।
मुगल चमूपति के अनुचर थे, साथ में
रक्षा करते थे स्वामी के 'हरम' की।
दासी ने भी वही प्रश्न जब फिर किया—
"क्यो जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है ?"
सैनिक ने बढ़ करके तब उत्तर दिया—
"अभी यहाँ से दूर निरापद स्थान है,
यह नवाव साहव की आज्ञा है कड़ी—
मत रुकना तुम क्षण भर भी इस मार्ग में

"क्योंकि महाराणा की विचरण-भूमि है
वहाँ मार्ग में कहीं; मिलेगी क्षति तुम्हें
यदि ठहरोगे; रुकता हूँ इससे नही।"
दासी ने फिर कहा—"ज़रा ठहरो यहीं
क्योंकि प्यास ऐसी बेगम को है लगी,
चक्कर-सा मालूम हो रहा है उन्हें।"
सैनिक ने फिर दूर दिखा संकेत से
कहा कि वह जो झुरमुट-सा है दीखता
वृक्षों का, उस जगह मिलेगा जल, उसी
घाटी तक बस चली-चलो, कुछ दूर है।"

× × ×

विस्तृत तरु-शाखाओं के ही बीच मे
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था;
कल कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन-सा देती हुई।
ठहरा, फिर वह दल उसके ही पुलिन मे
प्रखर ग्रीष्म का ताप मिटाता था वही
छोटा-सा शुचि स्रोत, हटाता क्रोध को

जैसे छोटा मधुर शब्द, हो एक ही।
अभी देर भी हुई नहीं उस भूमि में
उन दर्पोद्धत यवनों के उस वृन्द को,
कानन घोषित हुआ अश्व-पद-शब्द से,
'लू' समान कुछ राजपूत भी आ गये।
लगे झुलसने यवनो को निज तेज से
हुए सभी सन्नद्ध युद्ध आरम्भ था—
पण प्राणो का लगा हुआ-सा दीखता।
युवक एक जो उनका नायक था वहाँ
राजपूत था; उसका बदन बता रहा
जैसी भौ थी चढ़ी ठीक वैसा कड़ा
चढ़ा धनुष था, वे जो आँखें लाल थीं
तलवारो का भावी रंग बता रही।
यवन पथिक का झुण्ड बहुत घबरा गया
इन कानन-केसरियो की हुङ्कार से।
कहा युवक ने आगे बढ़ कर जोर से
"शस्त्र हमें जो दे देगा वह प्राण को
पावेगा प्रतिफल मे, होगा मुक्त भी।"

यवन-चमूनायक भी कुछ कादर न था,
कहा—"मरूँगा करते ही कर्त्तव्य को—
वीर शस्त्र को देकर भीख न माँगते।"
मचा द्वन्द तत्र घोर उसी रणभूमि में
दोनो ही के अश्व हुए रथचक्र से
रण शिक्षा, कैसा, कर लाघव था भरा।
यवन वीर ने भाला निज कर मे लिया।
और चलाया वेग सहित, पर क्या हुआ
राजपूत तो उसके सिर पर है खड़ा
निज हय पर, कर मे भी असि उन्मुक्त है।
यवन-वीर भी घूम पड़ा असि खींच के
गुथीं बिजलियाँ दो मानो रण व्योम मे
वर्षा होने लगी रक्त के बिन्दु की;
युगल द्वितीया चन्द्र उदित अथवा हुए
धूलि-पटल को जलद-जाल-सा काट के।
किन्तु यवन का तीक्ष्ण वार अति प्रबल था
जिसे रोकना 'राजपूत' का काम था,
रुधिर फुहारा-पूर्ण-यवन-कर कट गया

असि जिसम था, वेग-सहित वह गिर पड़ा
पुच्छल तारा सदृश, केतु-आकार का।
अभी देर भी हुई नहीं शिर रुण्ड से
अलग जा पड़ा यवन-वीर का भूमि मे।
बचे हुए सब यवन वहीं अनुगत हुए
घेर लिया शिविका को क्षत्रिय सैन्य ने।
"जय कुमार श्री अमरसिंह !"—के नाद से
कानन घोषित हुआ, पवन भी त्रस्त हो
करने लगा प्रतिध्वनि उस जय शब्द की।
राजपूत वन्दी गण को लेकर चले।

× × ×

दिन-भर के विश्रांत विहग कुल नीड़ से
निकल-निकल कर लगे डाल पर बैठने।
पश्चिम निधि मे दिनकर होते अस्त थे
विपुल शैल माला अर्बुदगिरि की घनी—
शान्त हो रही थी, जीवन के शेष मे
कर्म्मयोगरत मानव को जैसी सदा
मिलती है शुभ शांति। भली कैसी छटा

प्रकृति-करों से निर्मित कानन देश की
स्निग्ध उपल शुचि स्रोत सलिल से धो गये,
जैसे चंद्रप्रभा मे नीलाकाश भी
उज्ज्वल हो जाता है छुटी मलीनता।
महाप्राण जीवों के कीर्ति सुकेतु से
ऊँचे तरुवर खड़े शैल पर झूमते।
आर्य्य जाति के इतिहासों के लेख-सी,
जल-स्रोत-सी बनी चित्र रेखावली
शैल-शिखाओं पर सुंदर है दीखती

करि-कर-सम कर-बीच लिये करवाल है
कौन पुरुष वह बैठा तट पर स्रोत के
दोनों आँखें उठ-उठ कर बतला रहीं
"जीवन-मरण"-समस्या उनमें है भरी।
यद्यपि है वह वीर श्रांत तब भी अभी
हृदय थका है नहीं, विपुल बल पूर्ण है;
क्योंकि कर्म्मफल लाभ गूढ़ नत है स्वयं।
करुणामिश्रित वीरभाव उस वदन पर
अनुपम महिमा-मण्डित शोभित हो रहा;

जन्मभूमि की ओर महा करुणा भरी
यवन शत्रु प्रति कालानल के कोप-सी
दोनो आँखें, तिस पर भी गम्भीरता
हर्ष भरा है अपने ही कर्त्तव्य का
आजीवन जिसको वह करता आ रहा।
कहो कौन है ?—आर्य्यजाति के तेज-सा ?
देशभक्त, जननी का सच्चा पुत्र है,
भारतवासी ! नाम बताना पड़ेगा
मसि मुख मे ले अहो लेखनी क्या लिखे !
उस पवित्र प्रातःस्मरणीय सुनाम को।
नहीं, नहीं, होगी पवित्र यह लेखनी
लिखकर स्वर्णाक्षर मे नाम 'प्रताप का।
तुम अपने 'प्रताप' को विस्मृत हो गये
अरे ! कृतघ्न बनो मत उसको भूल के
यह महत्त्वमय नाम स्मरण करते रहो।
बैठे-बैठे वन-शोभा थे देखते—
अपनी लीलाभूमि, सुगौरव कुञ्ज की।
सालुम्ब्रापति आये, अभिवादन किया।

आर्य्यनाथ ने कहा—"कहो सर्दारजी,
समाचार है कैसा अब मेवाड़ का ?"
कृष्णसिंह ने कहा—"देव ! इस प्रांत मे
एक वार फिर आर्य्य-राज्य अब हो गया,
वीर राजपूतो की तलवारें खुलीं,
चमक रही मेवाड़-गगन मे ज्वलित हो,
भाग रहे है भीत यवन मेवाड़ से।
राजन् ! समाचार है सुखमय देश का
अभी यवन का एक वृन्द बंदी हुआ
राजकुँवर ने भेजा है उनको यहाँ
दुर्ग-द्वार पर वे बंदी है और भी,
सुनिये, उसमे है नवाब-पत्नी यहाँ।"
आर्य्यनाथ ने कहा—"किया किसने उसे
बंदी ? स्त्री को क्षत्रिय देते दुख नहीं।"
कृष्णसिंह ने कहा—"प्रभो, उस युद्ध में
जितने बंदी हुए सभी भेजे गये।
अब जो आज्ञा मिले बस वही ठीक है
वही किया जावेगा ; पर यह बात भी

ध्यान कीजिये, वह वनिता है शत्रु की।
दिल्लीपति का सैनप हो आया यहाँ
जो रहीमखाँ अकबर का चिर-मित्र है
उसकी ही परिणीता है यह सुंदरी
इसका बन्दी रहना नैतिक दृष्टि से
ठीक नहीं क्या ? जब तक ये सब शांत हों।
कहा तमककर तब प्रताप ने—"क्या कहा
अनुचित बल से लेना काम सुकर्म्म है।
इस अबला के बल से होगे सबल क्या ?
रण मे टूटे ढाल तुम्हारी जो कभी
तो बचने के लिये शत्रु के सामने
पीठ करोगे ? नहीं, कभी ऐसा नहीं,
दृढ़-प्रतिज्ञ यह हृदय, तुम्हारो ढाल बन
तुम्हे बचावेगा। इसपर भी ध्यान दो
घोर अँधेरे मे उठती जब लहर हो
तुमुल घात-प्रतिघात पवन का हो रहा
भीमकाय जलराशि क्षुब्ध हो सामने
कर्णधार-रक्षित दृढ़-हृदय सु-नाव को

छोड़, कूदना तिनके का अवलम्ब ले
घोर सिन्धु मे, क्या बुधजन का काम है ?
परम सत्य को छोड़ न हटते वीर हैं।
सालुम्ब्राधिपते ! क्या अब होगा यही
क्षुद्रकर्म्म इस धर्म्मभूमि मेवाड़ में ?
और 'अमर' ने ही नायक होकर स्वयं
किया अधम इस लज्जाकर दुष्कर्म्म को !
बस बस, ऐसे समाचार न सुनाइये
शीघ्र उसे उसके स्वामी के पास अब
भेज दीजिये, बिना एक भी दुख दिये।
सैनिक लोगो से मेरा संदेश यह
कहिये कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अबला को दुख दें, चाहे हो शत्रु की।
शत्रु हमारे यवन—उन्हीं से युद्ध है
यवनीगण से नही हमारा द्वेष है।
सिंह क्षुधित हो तब भी तो करता नही
मृगया, डर से दबी शृगाली-वृन्द की।

× × ×

"सुंदर मुख का होता है सर्वत्र ही
विजय, उसे कर सकता कोई भी नहीं।
रमणी के सुकुमार अंग पर केशरी
सम्हल-सम्हल कर करता प्रेम-प्रकाश है,
प्रिये! तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य्य से
वशीभूत होकर वह कानन-केसरी,
दाँत लगा न सका, देखा—गान्धार का
सुन्दर दाख"—कहा नवाब ने प्रेम से।
कँपी सुराही कर की, छलकी वारुणी
देख ललाई स्वच्छ मधूक कपोल में;
खिसक गई डर से जरतारी ओढ़नी,
चकाचौंध-सी लगी विमल आलोक को,
पुच्छमर्दिता वेणी भी थर्रा उठी।
आभूषण भी झन-झन कर बस रह गये।
सुमन-कुञ्ज में पञ्चम स्वर से तीव्र हो
बोल उठी वीणा—"चुप भी रहिये जरा
जिसकी नारी छोड़ी जाकर शत्रु से,
स्वीकृत हो सादर अपने पति से, भला

वह भी बोले, तो चुप होगा कौन फिर ।"
अपने हँसते मुख को शीघ्र बढ़ा दिया ।
तब नवाब ने पानपात्र निश्शेप कर
कहा कि—"सज्जन से हो यदि अपमान भी
अच्छा है दुर्जन-कृत बहुसम्मान से ।
सज्जन कृत अपमान न होता है कभी
हृदय दिखाने को, होता वह भूल से;
किन्तु नीच नर जो करता सम्मान है
उसमें भी उसका घमण्ड है छिप रहा
केवल आडम्बर में निज अभ्यर्थना
करता है वह अपनी कुत्सित नीति से ।"
"बस बस, बातें अब विशेष न बनाइये"
कहा सुन्दरी ने—"यह सब भी ढग है,
प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में हास भी
पाद-पूर्त्ति-सा होता है दुष्काव्य में;
यह थोथा पाण्डित्य न आज बघारिये
होता जो निरुपाय वही क्या सरल है ?"
"प्रिये ! मर्म्म की बातें मत ऐसी कहो

इससे होता दुःख"—कहा नव्वाब ने—
"मै जब से सेनापति हो आया यहाँ
सचमुच, वीर प्रताप सदा विजयी रहा
मै होकर निश्चेष्ट देखता था वही—
रण-क्रीड़ा, स्वाधीना जननी-भूमि के
वीर पुत्र का, निर्निमेष होकर अहो!
तुर्क देश से लेकर हाँ गान्धार तक
वीर भूमि के शतशः कानन देख कर
वीर कथाओं को सुन कर भी आज तक
प्राप्त न हुई कभी थी मुझे प्रसन्नता;
क्योंकि सभी वे क्रूर और निर्दय मिले
युद्ध-कार्य्य करते थे अपने स्वार्थ से।
जन्मभूमि के लिये, प्रजा-सुख के लिये,
इतना आत्मोत्सर्ग भला किसने किया?
दुग्ध-फेन-निभ शय्या को यों छोड़ कर
सूखे पत्ते कौन चबाता है कहो—
मातृभूमि की भक्ति, देशहित-कामना,
किसको उत्तेजित करती है, वे कहाँ?

जिस कानन में पहुँचा युद्ध-विनोद में
सदा मिला सन्नद्ध, लिये तलवार ही,
गिरि-कन्दर से देख स्वकीय शिकार को
जैसे झपटे सिंह, वही विक्रम लिये
वीर 'प्रताप' दहकता था दावाग्नि-सा।
सत्य प्रिये! मैं देख शूर छवि वीर की
होता था निश्चेष्ट, वाह कैसी प्रभा!
कितने युद्धों में मेरी निश्चेष्टता
हुई विजय का कारण वीर 'प्रताप' के,
क्योंकि मुग्ध होकर मैं उनको देखता।"
"कोरी भक्ति भला होती किस काम की
कुछ उसका उपयोग अवश्य दिखाइये—"
कहा सुन्दरी ने तन कर कुछ गर्व से—
"सच्चे तुर्क न होते कभी कृतघ्न हैं।"
"प्रिये! भला किस मुख से मैं तलवार अब
लेकर कर में समर करूँ उस वीर से,
मिलती मुझे पराजय भी यदि युद्ध मे
तो भी इतना क्षोभ न होता हृदय में।"

कहा, देख कर नत दृग से नव्वाब ने—
‘ जिसकी महिमा गाते हैं समकण्ठ से
भारत के नर-नारी, उस सम्राट का
बढ़ा महत्त्व, हुई प्रताप से शत्रुता
सचमुच ऐसा वीर उदार कहाँ मिले।
मैं तो अब, फिर जाऊँगा दिल्ली अभी,
चाहे मुझको लोग भले कायर कहें ;
उस अपयश को सह लूँगा मैं भले ही
किन्तु न सैनप पद अब मेरे योग्य है।”
कहा पास में और खिसक कर प्रेम से
कमल-लोचना बेगम ने नव्वाब से—
“प्रियतम ! सचमुच यह पार्वत्य प्रदेश भी
अब न मुझे अच्छा लगता है, शीघ्र ही
मैं चलना चाहती सुखद काश्मीर को।
कुछ दिन की छुट्टी लेकर सम्राट से,
चलिये जल-परिवर्तन करने शीघ्र ही
और हो सके तो मिल कर सम्राट से,
राणा से शुभ संधि करा ही दीजिये।”

"मुग्धे ! इतने पर भी तुम परिचित नहीं
कुलमानी, दृढ़, वीर, महान 'प्रताप' से !
भला करेगा संधि कभी वह यवन से ?
कई हो चुके है प्रस्ताव मिलाप के
पर प्रताप निज दृढ़ता ही पर अटल है—"
कहा खानखाना ने कुछ गम्भीर हो—
"वामलोचने ! कर्म्मयोग-रत वीर को
मिलती सिद्धि सदा अपने सत्कर्म्म से
उसके कुछ संयोग स्वयं बन जायँगे
ऐसे, जिससे उसको मिले अभीष्ट फल ।
सच्चा साधक, है सपूत निज देश का
मुक्त पवन में पला हुआ वह वीर है ।
सत् 'प्रताप' को स्वयं मिलेगी सम्पदा
परमपिता की जो होगी शुभ कामना
तो वह मुझे बनावेगा अपना कभी
परिचारक साधन में इस सत्कार्य्य के ।"

× × × ×

तारा-हीरक-हार पहन कर, चंद्रमुख—

दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार से)
जैसे कोई पूर्ण सुंदरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से।
अकबर के साम्राज्य भवन के द्वार से
निकल रही थी लपट सुगन्ध सनी हुई
बसरा के 'गुलाब' से वासित हो रहा,
भारत का सुख शीत पवन, जैसे कहीं
मिले विलास नवीन विवेकी हृदय से।
राज-भवन में मणिमय दीपाधार सब
स्वयं प्रकाशित होते थे, आलोक भी
फैल रहा था, स्वच्छ सुविस्तृत भवन में
कृत्रिम मणिमय लता, भित्ति पर जो बनी
नव वसन्त-सा उन्हे विमल आलोक ही
मुक्ताफलशालिनी बनाता था वहाँ,
कुसुम-कली की मालायें थीं झूमतीं
तोरन वंदनवार हरे द्रुमपत्र के।
सुरभि पवन से सब कलियाँ खिलने लगीं,

कृश मालायें गजरे-सी अब हो गईं।
सज्ज सभागृह में सब अपने स्थान पर
वन्दी, चारण, प्रतिहारीगण थे खड़े,
ढले हुए सुंदर साँचे मे शिल्प के
पुतले-जैसे सजे गये हो भवन मे।
पुष्पाधार, सजाये कुसुमित क्यारियाँ,
मौन खड़े थे सुंदर मालाकार-से;
कृत्रिम भँवर न गूँज रहा था त्रास से।
सुन्दर मणिमय मंच मनोरम था लगा,
बैठे थे उपधान सहारे हिन्द के—
अकबर शाहंशाह चिबुक कर पर धरे।
अभिवादन कर, खड़े रहे निर्दिष्ट निज—
स्थानों पर सब चतुर शिरोमणि मंत्रिगण;
उस प्रभावशाली सतेज दर्बार में
क्षत्रिय नरपतिगण भी सविनय थे झुके।
तब रहीमखाँ के प्रति रुख करके, चतुर—
अकबर ने कुछ हँस कर पूछा व्यंग से—
"कहिये यहाँ आगरे की जलवायु से

स्वास्थ्य हुआ अब ठीक आपका वा नहीं ?"
कहा खानखाना ने सिर नीचे किये—
"शहंशाह अब भी कुछ वैसा है नहीं
जैसा अच्छा होना हूँ मैं चाहता,
इसीलिये अब मेरी है यह प्रार्थना
मुझे हुक्म हो तो जाऊँ काश्मीर ही,
क्योंकि वही जलवायु मुझे है स्वास्थ्यकर ;
यही बताया है हकीम ने भी मुझे ।"
अकबर ने फिर कहा—"भला यह तो कहो,
क्योंकर ऐसा स्वास्थ्य तुम्हारा हो गया ?"
कहा खानखाना ने फिर कुछ नम्र हो—
"बस हुजूर, मुझसे न वही कहलाइये
जिसे आपसे कहा नहीं मैं चाहता ।
क्षमा कीजिये । यदि आज्ञा होगी कि हाँ,
कहो ! मुझे फिर सच कहना ही पड़ेगा ।"
अकबर ने तब कहा—"सत्य निर्भय कहो ।"
कहा खानखाना ने झुक कर—"जिस दिवस
मुझे बनाकर सैनप भेजा आपने

वीरभूमि-मेवाड़-विजय के हेतु, हाँ—
उस दिन सचमुच मुझे असीम प्रसन्नता
हुई, कि मै भी देखूँगा उस वीर को,
जो अब तक होकर अवाध्य सम्राट का
करता है सामना बड़े उत्साह से!
सचमुच शाहंशाह एक ही शत्रु वह
मिला आपको है कुछ ऊँचे भाग्य से;
पर्वत की कन्दरा महल है, बाग है—
जंगल ही, आहार—घास, फल-फूल है;
सच्चा हृदय सहायक, उसके साथ है।
मुगल-वाहिनी से होता जब सामना
भिड़ जाना सन्मुख उसका कर्त्तव्य था,
सुकुमारी कन्या त्यों बालक का कभी
छिन जाता आहार बना जो घास से।
वे भी जब है अश्रु बहाते तो नही
होता है पाषाण-हृदय द्रवमय कभी।
तिस पर भी उसके इस हृदय-महत्त्व का
कैसे मैं वर्णन कर सकता हूँ प्रभो!

राजकुँवर ने बेगम को बन्दी किया
फिर भी सादर उसे भेज कर पास मे
मेरे, मुझको कैसा है लज्जित किया
मनोवेदना से मैं व्याकुल हो उठा;
इसी लिये यह रोग हुआ है असल मे।
इससे छुटकारे का एक उपाय है—
आज्ञा हो तो मैं भी कुछ बिनती करूँ।"
हँसे और बोले अकबर—"हाँ हाँ कहो,
सब मुझको है विदित, हुआ जो जो वहाँ।"
कहा खानखाना ने—"राणा ने कभी—
किया नही आक्रमण आपके राज्य पर।
अपने छोटे राज्य मात्र से तुष्ट हैं,
और किसी से भड़क रही हो शत्रुता
तो वह अपने भुजबल से जो कर सके
करे, शिथिल होगा। तो भी बल आपका
बढ़ा रहेगा। ऐसे सज्जन व्यक्ति से
आप क्यो न अपना महत्त्व दिखलाइये।
सच कहिये, क्या ऐसे उन्नत-हृदय को

दुख देना है अच्छा ईश्वर-नीति में ?
केवल चुप हो जाना ही है आपका—
सन्धि शांति के मंगलघोष-समान ही,
दो महत्त्वमय हृदय एक जब हो गये
फैलेगा फिर वह महान सौरभ यहाँ
जिसके सुखमय गंध-प्रेम में मत्त हो
भारत के नर गावेंगे यश आपका।"
अकबर ने फिर कहा—"बात यह ठीक है,
अब न लड़ाई राणा से उपयुक्त है।
भेजो आज्ञापत्र शीघ्र उस सैन्य को,
सब जल्दी ही चले आयँ अजमेर में।"
कहा खानखाना ने—"हे उन्नत-हृदय—
भारत के सम्राट ! दयामय आपकी
सुयश-लता की बीज उर्वरा-भूमि में
शांति-वारि से सिञ्चित हो, फलवती हो।
अब न काम है जाने का काश्मीर को
इन चरणों की सेवा ही भू-स्वर्ग है!"

'प्रसाद' जी की अन्य कृतियाँ—

१—स्कंदगुप्त विक्रमादित्य—(ऐतिहासिक नाटक)—गुप्तकाल के सर्वश्रेष्ठ महावीर स्कंदगुप्त विक्रमादित्य का, वीरता, धीरता, साहस, उत्साह, पराक्रम और त्याग-पूर्ण चरित्र-चित्रण। नाटकीय गीतों की स्वर-लिपि। रेशमी आवरण पृष्ठ पर चरित्रनायक का दर्शनीय भव्य चित्र। मू० सुनहली जिल्ददार २॥)

२—राज्यश्री—(ऐतिहासिक नाटक)—वीर भारत के त्यागपूर्ण राजत्व की उज्ज्वल झलक का निदर्शक। परिवर्त्तित और परिवर्द्धित, बिलकुल ताजा और दिव्य संस्करण। मू० सजिल्द ॥=)

३—कामना—(मिस्टिक नाटक) मानव जीवन की कृत्रिमता और स्वाभाविकता का निदर्शक। मूल्य सजिल्द १।)

४—अजातशत्रु—(ऐतिहासिक नाटक)—सत्य, सतीत्व और अहिंसा से विजयी पात्रों का अनमोल चरित्र-चित्रण। हिन्दू-यूनिवर्सिटी की इण्टरमीडियट तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा-परीक्षा के कोर्स में निर्धारित। मूल्य १)

५—आँसू—प्रेम-विह्वल कर देने वाला काव्य। मू० केवल ।)

६—प्रतिध्वनि—छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियाँ। मूल्य ।=)

७—महाराणा का महत्त्व—अतुकांत काव्य में महाराणा प्रताप का ओजपूर्ण उदार चरित्र चित्रण। सचित्र, मूल्य ।=)

८—चित्राधार—'प्रसाद' जी की बीस वर्ष की अवस्था तक लिखी गई कुछ कृतियों का संग्रह। मूल्य १॥)

९—कानन-कुसुम— 'प्रसाद'जी के प्रारंभिक काल की कविताओं का सुन्दर संग्रह। मू० १)

१०—झरना—भावमयी कविताओं का झरना। मू० ।=)

११—छाया—'प्रसाद' जी के प्रारंभिक काल की कहानियों का संग्रह। मू० १॥)

१२—जनमेजय का नागयज्ञ—(पौराणिक नाटक)—मानवता का बर्बरता पर विजय-निदर्शक। मू० ॥=)

(प्रेस में-)

१३—चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(ऐतिहासिक नाटक)—स्वावलंबन और स्वाभिमान का पाठ देनेवाला।

१४—विशाख—(गौरवपूर्ण ऐतिहासिक नाटक)—नूतन परिवर्त्तित और परिवर्द्धित सस्करण।

१५—आकाश-दीप—सुमिष्ट भाषा और कवित्व पूर्ण कल्पनाओं से हृदय में गुदगुदी पैदा करनेवाली, एक दम नई कहानियाँ।

१६—कंकाल—(उपन्यास)—हिंदी के उपन्यास-जगत मे नवीन भावों, नवीन चरित्रों, और नवीन कल्पनाओं से हलचल पैदा कर देने वाला।

१७—प्रेम-पथिक—हृदय को शांतिदायक अतुकांत प्रेम-काव्य।

१८—करुणालय— कथात्मक अतुकांत करुण गीति नाट्य।

प्रो० पं० केशवप्रसाद मिश्र 'अनुवादित-

६—मेघदूत—सरल एवं सरस अनुवाद। मूल ग्रंथ के समान आनन्ददायक। सभी पत्र-पत्रिकाओं से प्रशंसित। मू० केवल ।)

संगीताचार्य्य लक्ष्मणदास 'मुनीमजी' संकलित-

७—संगीत-समुच्चय—संगीत के विद्यार्थियों और प्रेमियों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण। मर्म्मज्ञों और पत्रों से प्रशंसित। मू० सजिल्द २।)

श्री० शांतिप्रिय द्विवेदी संकलित-

८—परिचय—प्रमुख छाया-वादी कवियों के उद्गारों का संकलन और उनका मर्म्मस्पर्शी परिचय। मू० १)

श्री०शांतिप्रिय द्विवेदी-रचित

९—कुंज—तरुण कोमल कवि की छोटी-छोटी मधुर रचनाओं का दिव्य संग्रह। प्रेम और विश्वव्यथा के प्राणस्पर्शी-गान। प्रेस में।

हमारे यहाँ बा० मैथिलीशरणजी गुप्त की भी सब पुस्तकें मिल सकती हैं। हमारा सूचीपत्र मँगाइये।